भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका



ISSN 0973-9777
GISI Impact Factor 2.4620
वर्ष-10 अंक-2
मार्च-अप्रैल 2016

एम.पी.ए.एस.वी.ओ.
द्वारा आन्वीक्षिकी स्वास्थ्य
सत्यापीकरण से प्रकाशित

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका
वर्ष-10 अंक-2 मार्च-2016

शोध प्रपत्र
सांस्कृतिक कसौटी पर तुलसीदास का मूल्यांकन -डॉ. ममता चौरसिया 1-8
वैश्वीकरण और जनसंचार माध्यम -प्रेमलता झेडे 9-11

जयशंकर प्रसाद का धार्मिक एवं नैतिक दृष्टिकोण -डॉ. मंजु शर्मा 12-15
हरिशंकर परसाई का व्यक्तित्व -डॉ. रमेश दण्डम 16-19

वृषद्वती से गंगा तक : एक संक्षिप्त अवलोकन -डॉ. अंशुमाला मिश्र 20-22
राजकीय विद्यालयों में शिक्षा की अधोमुखी प्रवृत्ति के लिये उत्तरदायी कौन ? -डॉ. हेमराज 23-28

मीरा : भक्तिकाल में नारी शक्ति का सशक्त उद्घोष पाव -डॉ. निशा यादव 29-32
हिन्दी पत्रकारिता की विकास यात्रा में भारतेन्दुयुगीन पत्र -डॉ. सच्चिदानन्द द्विवेदी 33-42

ब्राह्मण ग्रंथों का सांस्कृतिक महत्व -डॉ. शारदा कुमारी 43-47
संस्कृत काव्यशास्त्र में रसालंकार -डॉ. सूर्यकान्त त्रिपाठी 48-49

काव्येषु राजशास्त्रविषयिणी चर्चा -डॉ. अनामिका पाठक 50-54
बैडिट क्वीन : चौराहे पर खड़ा मानवाधिकार' -आशुतोष वर्मा 55-59

सूचना का अधिकार एवं मीडिया : औचित्य और चुनौतियाँ -डॉ. संजीव गुप्ता एवं अरविन्द कुमार पाल 60-63
भारतीय संविधान और मानवाधिकार -सतीश कुमार 64-68

स्त्री का मानवाधिकार : या तो हाशिये पर या दोराहे पर -डॉ. विभा त्रिपाठी 69-73
लौह तकनीक से सम्बन्ध विचार द्वितीय नगरीकरण के संदर्भ में लोहे की भूमिका -डॉ. जेबा इस्लाम 74-77

जीवन व शारीरिक विकास एवं स्वास्थ्य के लिये विटामिन की उपयोगिता -प्रो. अनिता कुमारी 78-82
आधुनिक पुस्तकालयों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का प्रभाव -अरुण कुमार गुप्त 83-87

भारतेन्दुयुगीन पत्रकारों का सामाजिक और साहित्यिक अवदान -डॉ. सच्चिदानन्द द्विवेदी 88-95
बौद्ध दर्शन का "शमन" -मधुकर मिश्र 96-98

प्रिंट ISSN 0973-9777, वेबसाइट ISSN 0973-9777

पत्रावली संख्या V-34564, पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध सन्दर्भ पत्रिका (2016) 10, 16-19
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 08 फरवरी 2016

हरिशंकर परसाई का व्यक्तित्व

डॉ. रमेश टण्डन*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित हरिशंकर परसाई का व्यक्तित्व शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं एतेद्वारा घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी आन्वीक्षिकी की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और पाया ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कॉपीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

गरीबी को अतिनजदीक से अनुभव करने वाले, सामान्य जीवन शैली, औघड़ व्यक्तित्व, तेज स्मरण शक्ति से सम्पन्न, अविवाहित परसाई जी ने व्यंग्य को एक नया आयाम दिया। इनकी से पाठकों ने जाना कि व्यंग्य ही सच्चाई से साक्षात्कार कराता है, मिथ्याचारों व भ्रष्टाचारों को उजागर करता है। आप व्यंग्य की दुनिया के सर्वप्रथम लेखक हैं और व्यंग्य के चारों स्तम्भों हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल व रविन्द्रनाथ त्यागी में से शीर्षस्थ व्यंग्यकार के रूप में सदैव स्मरण रहेंगे।

कूट शब्द- ''व्यंग्य के महानायक श्री हरिशंकर परसाई''

आपका जन्म 22 अगस्त 1924 ई. को ग्राम- जमानी जिला- होशंगाबाद (मध्यप्रदेश) में हुआ। सन् 1936 या 1937 की बात है- आप आठवीं के छात्र थे। कस्बे में प्लेग फैल गयी थी। आबादी पर छोड़ जंगल में टपरे बनाकर रहने चली गयी थी। आप लोग नहीं गये थे। माँ बहुत बीमार थी, उन्हें लेकर जंगल नहीं जाया जा सकता था। साँय-साँय करते पूरे आस-पास में आपके ही घर चहल-पहल थी। काली रातें। इनमें आपके घर जलने वाले कंदील। आपको इन कंदीलों से डर लगता था। कुत्ते तक बस्ती छोड़ गए थे। रात के सन्नाटे में स्वयं की आवाजें भी डरावनी लगती थी। रात को मरणासन्न माँ के सामने आप लोग आरती गाते- जय जगदीश हरे, भक्त जनों के संकट पल में दूर करे। गाते-गाते पिताजी सिसकने लगते, माँ बिलखकर आप बच्चों को हृदय से चिपटा लेती और साथ में आप सभी रोने लगते। रोज का यही नियम था। फिर रात को पिताजी, चाचा और दो-एक रिश्तेदार लाठी बल्लम लेकर घर के चारों तरफ घूम-घूमकर पहरा देते। ऐसे भयकारी आसदायक वातावरण में एक रात तीसरे पहर माँ की मृत्यु हो गई। कोलाहल और विलाप शुरू हो गया। कुछ कुत्ते भी सिमटकर आ गए और योग देने लगे।

* सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी शा. महाविद्यालय (छत्तीसगढ़), भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.सी. बी. मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी संयुक्त सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित समीक्षा प्रकाशन। आज हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

माँ की मृत्यु के बाद पिताजी टूट-से गए। लगातार बीमार, हताश, निष्क्रिय और अपने से ही डरने लगे। धंधा ठप्प। जमा पूंजी खाने लगे। बीमारी की हालत में पिताजी ने आपकी एक बहन की शादी भी कर दी थी। इसके बावजूद आपके छोटे दो छोटी बहनें और एक भाई था।

आपका मैट्रिक हुआ। 18 वर्ष की आयु में जंगल विभाग, नाकू (इटारसी) में नौकरी मिली। जंगल में सरकारी टपरे में रहना हुआ। जमीन पर ईंटें रखते थे, फिर उन पर पटिए जमाकर बिस्तर लगाते थे। नीचे जमीन को चूहों ने पोला कर रखा था। चूहे रात भर नीचे धमाचौकड़ी करते और आप ऊपर सोये रहते। कभी चूहे ऊपर आ जाते तो आपकी नींद टूट जाती पर फिर सो जाते। छह महीने धमाचौकड़ी करते चूहों पर आप सोये।

फिर नौकरी की तलाश। इस दौरान आपने तीन विद्या सीखी। पहली विद्या- बिना टिकट यात्रा करना। जबलपुर से इटारसी, टिमरनी, खंडवा, इन्दौर, देवास बार-बार चक्कर लगाने पड़ते। पैसे थे नहीं। आप बिना टिकट बेखटके गाड़ी में बैठ जाते। तरकीबें बचने की बहुत आ गयी थीं। पकड़े जाते तो अच्छी अंग्रेजी में अपनी मुसीबत का बखान करते। अंग्रेजी के माध्यम से मुसीबत, बाबुओं को प्रभावित करती और वे कहते- लेट्स हेल्प दी पूअर बॉय। दूसरी विद्या- उधार माँगने की। तीसरी विद्या- बेफिक्री, जो होना होगा, होगा, क्या होगा ? ठीक ही होगा।

एक बार शिक्षाधिकारी होशंगाबाद से नौकरी माँगने गये। निराश हुए। स्टेशन पर इटारसी के लिए गाड़ी के इंतजार में बैठे थे। पास में एक रूपया था, जो कहीं गिर गया था। इटारसी तो बिना टिकट चले जाते, पर खाते क्या? दूसरे महायुद्ध का जमाना। गाड़ियाँ बहुत लेट होती थीं। पेट खाली। पानी से बार - बार भरते। अंत में बेंच पर लेट गए। चौदह घंटे हो गए। एक किसान आपके किनारे आकर बैठ गया। उसके पास टोकरी में स्वयं के खेत के खरबूजे थे। आप उस समय चोरी कर सकते थे लेकिन नहीं किए। किसान खरबूजा काटने लगा। आपने कहा - तुम्हारे ही खेत के होंगे। बड़े अच्छे हैं। किसान ने कहा - सब नर्मदा मैया की किरपा है भैया! शक्कर की तरह है। लो खाके देखो। उसने दो बड़ी फाँकें दीं। आपने कम-से-कम छिलका छोड़कर सब खा लिया।

आपको जबलपुर के सरकारी स्कूल में नौकरी मिल गयी। आपके पास किराये तक के पैसे नहीं थे। दरी में कपड़े बांधकर गाड़ी में चढ़ गये। बिना टिकट। सामान के कारण इस बार थोड़ा खटके। पास में कलेक्टर का खानसामा बैठा था। बातचीत के दौरान आदमी आपको अच्छा लगा। आपने अपनी समस्या बतायी। उसने कहा - चिन्ता मत करो। सामान मुझे दो। मैं बाहर राह देखूंगा। तुम कहीं पानी पीने के बहाने सीखचों के पास पहुँच जाना। नल सीखचों के पास ही है। वहाँ सीखचों को उखाड़कर निकलने की जगह बनी हुई है। खिसक लेना। आपने वैसा ही किया। आपको इस नौकरी की पहली तनख्वाह मिली ही थी कि पिताजी की मृत्यु की खबर आ गयी। माँ के बचे जेवर बेचकर पिताजी का श्राद्ध किया।

आपने तय किया कि किसी से नहीं डरना है, जिम्मेदारी को गैर जिम्मेदारी के साथ निभाना है। आप इतने गैर जिम्मेदार हो गये कि बहन की शादी करने जा रहे थे और रेल में जेब कट गई और अगले स्टेशन पर पूड़ी-साग खाकर निश्चिंत मजे से बैठे रहे यह सोचकर कि कुछ हो ही जाएगा। मगर मदद आ गयी और शादी भी हो गई।

आपको एक दिन भोपाल से फोन पर खबर दी गई कि चौबीस तारीख को आपको पं. द्वारका प्रसाद मिश्र से मिलना है। मिश्र जी तब प्रधानमंत्री इंदिरागांधी के बहुत निकट थे। उन्होंने कहा कि आपको राष्ट्रपति से राज्यसभा की सदस्यता के लिए नामजद करायेंगे, आपको नये अनुभव होंगे, आर्थिक निश्चिंतता होगी और आप बहुत लिखेंगे। बात आपको अच्छी लगी। आप कुछ दिन बाद दिल्ली गये। सुभद्रा जोशी ने कहा कि आपका नाम चल रहा है और ऊपर है। केशवदेव मालवीय ने भी कहा। अब आपकी कल्पना में वेस्टर्न कोर्ट घूमने लगा। आप जबलपुर लौट आये। एक दिन श्रीकांत वर्मा का तार मिला कि फौरन दिल्ली आइये। आप पहुँचे। श्रीकांत से मिले। उन्होंने कहा- आपको पहले आ जाना था। कल शायद चार सदस्यों की नामजदगी हो चुकी। आप सुभद्रा जोशी के पास गये। उन्होंने फोन पर मिश्र जी से बात की। नामजदगी हो चुकी थी।

बनिया अलसी के घाटे को मूंगफली के मुनाफे से पूरा कर लेता है। 1985 में आपको दौड़ में मेडल पाने वाली लड़की पी. टी. उषा के साथ पद्मश्री मिल गया।

प्राइवेट स्कूल में आपने अध्यापकों की हड़ताल कराई थी और आपको नौकरी छोड़नी पड़ी थी। दूसरे स्कूल के प्रबंधकों ने आपको नौकरी दी। उसी स्कूल के ट्रस्ट का एक कॉलेज भी एक इमारत में चलता था। कालेज में हिन्दी के अध्यापक की

जगह खाली थी। वहाँ के प्राचार्य खम्भे की आड़ में या इमारत के एकान्त कोने में ले जाकर आपको धीरे-धीरे कहते- 'तो फिर आप कालेज में आ ही रहे हैं न। आप तय कर लीजिए। आप बुद्धिमान हैं, आपका व्यक्तित्व है, मैं तो आपको कालेज में लेकर ही रहूंगा।' आपकी इच्छा सचमुच में अध्यापक हो जाने की थी। विज्ञापन निकला। आवेदन-पत्र देने की तारीख के तीन दिन पहले आप प्राचार्य से मिले और पूछे- क्या मैं आवेदन कर दूँ? उन्होंने सीधे आपकी तरफ नहीं देखा, अगल-बगल देखते हुए उन्होंने कहा- 'हां, आवेदन करने में क्या हर्ज है।' आपने आवेदन नहीं किया। बाद में मालूम हुआ कि उन्हें एक-दो लोगों ने सलाह दी थी कि 'परसाई को यदि आपने कालेज में लिया तो वह लड़कों को भड़कायेगा, उपद्रव करायेगा, अध्यापकों को आपसे लड़वायेगा।' इसके बाद आपने स्कूल की नौकरी भी छोड़ दी।

घर में बहन, भांजे - भांजी और बहू हैं। विवाह नहीं किया। सभी मित्रों के बेटे-बेटियों की शादी की चिंता भी आप करते थे। आपकी स्मरण शक्ति अद्भुत थी। आपने किससे क्या कहा है, कभी नहीं भूलते। मिलने वालों की बातों को तुरन्त भांप जाते थे।

20 वर्ष बिस्तर पर रहे। इससे पहले दिनचर्या बिल्कुल अलग थी। घूमते रहते। बस स्टैण्ड में घूमते, पान की दुकान में बैठते, चाय टपरियों में पीते, पल्लेदारों से बातें करते। ट्रेन में तीसरे दर्जे - दूसरे दर्जे में सफर करते और चुपचाप आम आदमी की बातें सुनते। आपने विवाह नहीं किया, पर कोई कहता.....'भोपाल में रहिए, सागर में रहिए' तो बोलते..... .'परिवार को नहीं छोड़ सकता। जबलपुर नहीं छोड़ सकता।' परिवार माने क्या - बहन सीता, भांजे.....राजकुमार, प्रकाश, विद्याभूषण, भांजी- मुन्नी और राजकुमार के पुत्र सोनू और छोटू, छोटे भाई गौरीशंकर, उसकी पत्नी और दो बेटियाँ.. ..आदि के साथ गाँव में रहते रहे।

जंगल विभाग में नौकरी के बाद आपने 06 महीने खण्डवा में अध्यापन किया। दो वर्ष (1941-43) जबलपुर के स्पेन्स ट्रेनिंग कालेज में शिक्षण कार्य का अध्यपन किया। 1943 से वहीं के मॉडल हाई स्कूल में अध्यापन कार्य किया। अध्यापक एवं छात्रों के बीच परम लोकप्रियता अर्जित करने के बावजूद 1952 में इस्तीफा दिया। 1953 से 1957 तक प्राइवेट स्कूलों में पढ़ाया। फिर नौकरी को सदा के लिए अलविदा किया। तब से लगातार स्वतंत्र लेखन करते रहे।

आपने नागपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम. ए. किया। महत्वपूर्ण साहित्यिक योगदान के लिए रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर ने आपको डी. लिट्. की मानद उपाधि से सम्मानित किया। 1982 में साहित्य अकादमी से विभूषित। 1984 में मध्यप्रदेश शासन का शिखर सम्मान। 1986 में मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सर्वोच्च सम्मान 'भवभूति अलंकरण' से अलंकृत। 1989 में पद्मश्री से अलंकृत। विश्व शांति सम्मेलन सोवियत रूस में भारतीय प्रतिनिधि मंडल के एक सदस्य की हैसियत से सम्मिलित।

घटना 10 अगस्त 1995 की। कमला प्रसाद के शब्दों में, ''सुना था, कम बातें करते हैं। तबियत ठीक नहीं है। बोलने से थक जाते हैं। मैं उनके साथ रहा तो बोलते-पूछते रहे।

मैंने कहा, 'बाहर बैठता हूँ।'

बोले, 'थोड़ी देर आँख बंद कर लूंगा, ठीक हो जायेगा बैठो।'

मैंने कहा - 'मित्रों से मिलकर आता हूँ।'

बोले....'बाद में जाना।'

चलने लगा तो यह नहीं पूछा.....'कब आओगे।'

दीदी सीता ने कहा.....'भइया ठीक आ गए। तुमसे बातें खूब की। हल्के हुए।'

सोचता हूँ कि क्या उन्हें पता था कि यह आखिरी मुलाकात है?

10 अगस्त को सायं 7 बजे सेवाराम के साथ ग्वारीघाट पहुंचा तो चिता धू-धू जल रही थी। लोग वापस चले गए थे। केश बांस फूल की तरह जल गए। चिता का चक्कर लगाया। आँसू नहीं रुके तो नहीं रुके।''

क्यों लिखा ?

आपने 'गर्दिश के दिन' में लिखा है- "मेरा अनुमान है मैंने लेखन को दुनिया से लड़ने के लिए एक हथियार के रूप में अपनाया होगा। दूसरे, इसी में मैंने अपने व्यक्तित्व की रक्षा का रास्ता देखा। तीसरे, अपने को अवशिष्ट होने से बचाने के लिए मैंने लिखना शुरू कर दिया। यह तब की बात है, मेरा ख्याल है, तब ऐसी ही बात होगी।

पर जल्दी ही मैं व्यक्तिगत दुःख के इस सम्मोहन-जाल से निकल गया। मैंने अपने को विस्तार दे दिया। दुःखी और भी हैं। अन्याय-पीड़ित और भी हैं। अनगिनत शोषित हैं। मैं उनमें से एक हूँ। पर मेरे हाथ में कलम है और मैं चेतना सम्पन्न हूँ।

यहीं कहीं व्यंग्य-लेखक का जन्म हुआ। मैंने सोचा होगा-रोना नहीं है, लड़ना है। जो हथियार हाथ में है, उसी से लड़ना है। मैंने तब ढंग से इतिहास, समाज, राजनीति और संस्कृति का अध्ययन शुरू किया। साथ ही एक औघड़ व्यक्तित्व बनाया। और बहुत गम्भीरता से व्यंग्य लिखना शुरू कर दिया।"[1]

क्या लिखा ?

1. भूत के पाँव पीछे, 1961
2. बेईमानी की परत, 1965
3. हुनो भाई साधो, 1965
4. पगडंडियों का जमाना, 1966
5. सदाचार का तावीज, 1967
6. निठल्ले की डायरी, 1968
7. और अंत में, 1968
8. शिकायत मुझे भी है, 1970
9. ठिठुरता हुआ गणतंत्र, 1970
10. तिरछी रेखाएँ, 1972
11. अपनी-अपनी बीमारी, 1972
12. वैष्णव की फिसलन, 1976
13. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, 1977
14. विकलांग श्रद्धा का दौर, 1980
15. मेरी प्रतिनिधि व्यंग्य रचनाएँ
16. तट की खोज
17. तुलसीदास चंदन घिसै
18. जैसे उनके दिन फिरे
19. तब की बात और थी।

संदर्भ

[1]अग्रवाल, महावीर- *व्यंग्य संपक* - एक, पृष्ट संख्या 37
[2]अग्रवाल, महावीर- *व्यंग्य संपक* - एक, पृष्ट संख्या 24